ओमप्रकाश वाल्मीकि

जन्म	**:**	**30 जून 1950 ।**
जन्म-स्थान	**:**	**बरला, मुजफ्फरनगर, उत्तर प्रदेश ।**
माता-पिता	**:**	**मकुंदी देवी और छोटनलाल ।**
शिक्षा	**:**	**अक्षरज्ञान का प्रारंभ मास्टर सेवक राम मसीही के खुले, बिना कमरे, बिना टाट-चटाईवाले स्कूल से । उसके बाद बेसिक प्राइमरी स्कूल में दाखिला । 11वीं की परीक्षा बरला इंटर कॉलेज, बरला से उत्तीर्ण । लेकिन 12वीं की परीक्षा में अनुत्तीर्ण । फलस्वरूप बरला कॉलेज छोड़कर डी० ए० वी० इंटर कॉलेज, देहरादून में दाखिला । कई वर्षों तक पढ़ाई बाधित । 1992 में हेमवंती नंदन बहुगुणा, गढ़वाल, श्रीनगर विश्वविद्यालय से हिंदी में एम० ए० ।**
वृत्ति	**:**	**12वीं कक्षा में ही ऑर्डिनेंस फैक्ट्री, देहरादून में अप्रैंटिस की नौकरी । फिर ऑर्डिनेंस फैक्ट्री, चाँदा (चंद्रपुर, महाराष्ट्र) में ड्राफ्टमैन की नौकरी । संप्रति, भारत सरकार के रक्षा मंत्रालय के उत्पादन विभाग के अधीन ऑर्डिनेंस फैक्ट्री की ऑप्टो-इलेक्ट्रॉनिक्स फैक्टरी, देहरादून में अधिकारी के रूप में कार्यरत।**
सम्मान	**:**	**डॉ० अंबेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार (1993), परिवेश सम्मान (1995), जयश्री सम्मान (1996), कथाक्रम सम्मान (2000) ।**
कृतियाँ	**:**	**जूठन (आत्मकथा); सलाम, घुसपैठिए (कहानी संग्रह); सदियों का संताप, बस्स ! बहुत हो चुका, अब और नहीं (कविता संकलन); दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र (आलोचना) ।**
		महाराष्ट्र में 'मेघदूत' नाम की नाट्य संस्था स्थापित की । इस संस्था के माध्यम से अनेक नाटकों में अभिनय के साथ-साथ मंचन-निर्देशन भी किया ।

हिंदी क्षेत्र में पिछले दशकों में आए सामाजिक उभार और गहराती राजनीतिक चेतना के कारण दक्षिण और महाराष्ट्र प्रदेशों की तरह हिंदी साहित्य में भी दलित चेतना एवं भावधारा का विकास हुआ है । यह समाज एवं साहित्य के लिए हितकर एवं शुभ है । इससे यह तथ्य प्रमाणित होता है कि समाज में सामंती जकड़बंदियाँ टूट रही हैं या ढीली पड़ रही हैं । वैज्ञानिक परिदृष्टि, समाजवादी वैचारिक जागरण, मानवाधिकारवाद और लोकतंत्र के युग में सामंती सोच और भेदबुद्धि पर टिकी समाज व्यवस्था आमूल बदलनी चाहिए । उसे मध्ययुगीन संस्कारों से उबरकर समता, न्याय, बंधुत्व और सामाजिक सद्‌भाव की दिशा में अपना कायाकल्प करना चाहिए । सामाजिक-राजनीतिक-सांस्कृतिक क्षेत्रों में दिखाई पड़ते पिछड़ा-दलित उभार और संप्रदाय, जाति, लिंग आदि के विभेदों के विरुद्ध आंदोलनों के पीछे की कामना, संकल्प और विचार का यही सार है ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि हिंदी में दलित आंदोलन से जुड़े महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं । उनके साहित्य में महज आक्रोश और प्रतिक्रिया से परे समता, न्याय और मानवीयता पर टिकी एक नई पूर्णतर सामाजिक चेतना और संस्कृतिबोध की आहट है । वे सिर्फ किन्हीं विचारधाराओं के संसर्ग और ताप पर निर्भर समीकरणों और फॉर्मूलों के सहारे नहीं लिखते । उनके लेखन में उनके अपने जीवनानुभवों की सचाई और वास्तव बोध से उपजी नवीन रचना संस्कृति की अभिव्यक्ति होती है । दलित जीवन के रोष और आक्रोश को वे अपने संवेदनात्मक रचनानुभवों की भट्ठी में गलाकर रचना की एक नई इबारत पेश करते हैं, जिसका परिप्रेक्ष्य व्यापक अर्थों में मानवीय है ।

ओमप्रकाश वाल्मीकि की आत्मकथा 'जूठन' ने व्यापक पाठक वर्ग का ध्यान आकृष्ट किया था । उनकी आत्मकथा का यहाँ प्रस्तुत संकलित अंश बानगी के रूप में है । इस अंश से संपूर्ण आत्मकथा पढ़ने की प्रेरणा जगती है । आत्मकथा और उसका यहाँ संकलित अंश अनतिरंजित और वास्तविक है । वास्तविकता का माटी और पानी सरीखा रंग ही इसके रचनात्मक गद्य की विशेषता है । अपनी संवेदना और मर्मस्पर्शिता के कारण प्रस्तुत अंश मन पर गहरा असर छोड़ जाता है ।

◆ ◆ ◆

“सैकड़ों जातियों में विभक्त दलित समाज का जीवन जितना विविध आयामी है उसकी समस्याओं के भी उतने ही रूप हैं । प्रत्येक जाति की कुछ विशिष्ट समस्याएँ हैं, किंतु अभाव और उत्पीड़न सभी दलित जातियों का सामान्य और सबसे बड़ा सत्य है । हजारों साल से दलितों के अन्याय, अपमान, उत्पीड़न और अभाव के पीछे प्रमुख कारण उनका अशिक्षित होना रहा है । अशिक्षित होने के कारण दलित न तो अपने विरुद्ध रचे गए शास्त्रीय विधानों को ठीक से समझ सके और न उनका प्रतिकार कर सके बल्कि इसके विपरीत वे इस शास्त्रसम्मत शोषण को अपनी नियति मानते रहे । जीवन के लिए शिक्षा कितनी आवश्यक है, इसका एहसास उनको नहीं हुआ ।”

– जयप्रकाश कर्दम

जूठन

...एक रोज हेडमास्टर कलीराम ने अपने कमरे में बुलाकर पूछा, ''क्या नाम है बे तेरा ?''

''ओमप्रकाश'', मैंने डरते-डरते धीमे स्वर में अपना नाम बताया । हेडमास्टर को देखते ही बच्चे सहम जाते थे । पूरे स्कूल में उनकी दहशत थी ।

''चूहड़े का है ?'' हेडमास्टर का दूसरा सवाल उछला ।

''जी ।''

''ठीक है...वह जो सामने शीशम का पेड़ खड़ा है, उस पर चढ़ जा और टहनियाँ तोड़ के झाड़ू बणा ले, पत्तों वाली झाड़ू बणाना । और पूरे स्कूल कू ऐसा चमका दे जैसा सीसा । तेरा तो यो खानदानी काम है । जा फटाफट लग जा काम पे ।''

हेडमास्टर के आदेश पर मैंने कमरे, बरामदे साफ कर दिए, तभी वे खुद चलकर आए और बोले, ''इसके बाद मैदान भी साफ कर दे ।''

लंबा-चौड़ा मैदान मेरे वजूद से कई गुना बड़ा था । जिसे साफ करने से मेरी कमर दर्द करने लगी थी । धूल से चेहरा, सिर अट गया था । मुँह के भीतर धूल घुस गई थी । मेरी कक्षा में बाकी बच्चे पढ़ रहे थे और मैं झाड़ू लगा रहा था । हेडमास्टर अपने कमरे में बैठे थे लेकिन निगाह मुझ पर टिकी हुई थी । पानी पीने तक की इजाजत नहीं थी । पूरा दिन मैं झाड़ू लगाता रहा । तमाम अनुभवों के बीच कभी इतना काम नहीं किया था । वैसे भी घर में भाइयों का मैं लाड़ला था ।

दूसरे दिन स्कूल पहुँचा । जाते ही हेडमास्टर ने फिर झाड़ू के काम पर लगा दिया । पूरे दिन झाड़ू ही देता रहा । मन में एक तसल्ली थी कि कल से कक्षा में बैठ जाऊँगा ।

तीसरे दिन मैं कक्षा में चुपचाप जाकर बैठ गया । थोड़ी देर बाद उनकी दहाड़ सुनाई दी । उनकी दहाड़ सुनकर मैं थर-थर काँपने लगा था । एक त्यागी लड़के ने चिल्ला कर कहा, मास्साब वो बैठा है कोणे में ।

हेडमास्टर ने लपककर मेरी गर्दन दबोच ली । उनकी उँगलियों का दबाव मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था । जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोच कर उठा लेता है । कक्षा से बाहर खींच कर उसने मुझे बरामदे में ला पटका । चीख कर बोले, ''जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू...''

भयभीत होकर मैंने तीन दिन पुरानी वही शीशम की झाड़ू उठा ली । मेरी तरह ही उसके पत्ते सूख कर झड़ने लगे थे । सिर्फ बची थी पतली-पतली टहनियाँ । मेरी आँखों से आँसू बहने लगे थे । रोते-रोते मैदान में झाड़ू लगाने लगा । स्कूल के कमरे की खिड़की-दरवाजों से मास्टरों और लड़कों की आँखें छिप-छिप कर तमाशा देख रही थी । मेरा रोम-रोम यातना की गहरी खाई में लगातार गिर रहा था ।

मेरे पिताजी अचानक स्कूल के पास से गुजरे । मुझे स्कूल के मैदान में झाड़ू लगाता देख कर ठिठक गए । बाहर से ही आवाज देकर बोले, ''मुंशीजी, यो क्या कर रहा है ?'' वे प्यार से मुझे मुंशीजी कहा करते थे । उन्हें देखकर मैं फ़फक पड़ा । वे स्कूल के मैदान में मेरे पास आ गए । मुझे रोता देखकर बोले, ''मुंशीजी रोते क्यों हो ? ठीक से बोल क्या हुआ है ?''

मेरी हिचकियाँ बँध गई थीं । हिचक-हिचक कर पूरी बात पिताजी को बता दी कि तीन दिन से रोज झाड़ू लगवा रहे हैं । कक्षा में पढ़ने भी नहीं देते ।

पिताजी ने मेरे हाथ से झाड़ू छीन कर दूर फेंक दी । उनकी आँखों में आग की गर्मी उतर आई थी । हमेशा दूसरों के सामने कमान बने रहने वाले पिताजी की लंबी-लंबी घनी मूँछें गुस्से से फड़फड़ाने लगी थीं । चीखने लगे, ''कौन सा मास्टर है वो, जो मेरे लड़के से झाड़ू लगवावे है...?''

पिताजी की आवाज पूरे स्कूल में गूँज गई थी, जिसे सुनकर हेडमास्टर सहित सभी मास्टर बाहर आ गए थे । कलीराम हेडमास्टर ने गाली देकर मेरे पिताजी को धमकाया । लेकिन पिताजी पर धमकी का कोई असर नहीं हुआ । उस रोज जिस साहस और हौसले से पिताजी ने हेडमास्टर का सामना किया, मैं उसे कभी भूल नहीं पाया ।

(2)

........मेरी माँ मेहनत मजदूरी के साथ-साथ आठ दस तगाओं (हिंदू-मुसलमान) के घर तथा घेर (मर्दों का बैठकखाना तथा मवेशियों को बाँधने की जगह) में साफ-सफाई का काम करती थी । इस काम में मेरी बहन, बड़ी भाभी तथा जसवीर और जनेसर (दो भाई) माँ का हाथ बटाते थे । बड़ा भाई सुखवीर तगाओं के यहाँ वार्षिक नौकर की तरह काम करता था ।

प्रत्येक तगा के घर में दस से पंद्रह मवेशी (गाय, भैंस और बैल) सामान्य बात थी । उनका गोबर उठाकर गाँव से बाहर कुरड़ियों पर या उपले बनाने की जगह पर डालना पड़ता था । प्रत्येक घेर से हर रोज पाँच-छह टोकरे गोबर निकलता था । सर्दी के महीनों में यह काम बहुत ही कष्टदायक होता था । गाय, बैल और भैंस को सर्दी से बचाने के लिए बड़े-बड़े दालानों में बाँधा जाता था जिनमें गन्ने की सूखी पाती या फूस बिछा होता था । रातभर जानवरों का गोबर और मूत्र उसी दालान में फैलता रहता था । दस-पंद्रह दिनों बाद एक बार पाती बदली जाती थी या उसके ऊपर सूखी पाती बिछा दी जाती थी । इतने दिनों में दालानों में भरी दुर्गंध से गोबर ढूँढ़-ढूँढ़ कर निकालना बहुत तकलीफदेह होता था । दुर्गंध से सिर भिन्ना जाता था ।

इन सब कामों के बदले में मिलता था दो जानवर पीछे फसल के समय पाँच सेर अनाज । यानी लगभग ढाई किलो अनाज । दस मवेशी वाले घर से साल भर में 25 सेर (12-13 किलो) अनाज । दोपहर

के समय हर घर से बची खुची रोटी जो खासतौर पर चूहड़ों को देने के लिए आटे में भूसी मिलाकर बनाई जाती थी । कभी-कभी जूठन भी भंगन की टोकरी में डाल दी जाती थी ।

शादी-ब्याह के मौकों पर जब मेहमान या बाराती खाना खा रहे होते थे तो चूहड़े दरवाजे के बाहर बड़े-बड़े टोकरे लेकर बैठे रहते थे । बारात के खाना खा चुकने पर जूठी पत्तलें उन टोकरों में डाल दी जाती थीं, जिन्हें घर ले जा कर वे जूठन इकट्ठा कर लेते थे । पूरी के बचे खुचे टुकड़े, एक-आध मिठाई का टुकड़ा या थोड़ी बहुत सब्जी पत्तल पर पाकर बाँछें खिल जाती थीं । जिस बारात की पत्तलों से जूठन कम उतरती थी, कहा जाता था कि भुक्खड़ लोग आ गए हैं सारा चट कर गए हैं । अक्सर ऐसे मौकों पर बड़े-बूढ़े ऐसी बारातों का जिक्र बहुत रोमांचक लहजे में सुनाया करते थे कि उस बारात से इतनी जूठन आई कि महीनों खाते रहे थे ।

पत्तलों से जो पूरियों के टुकड़े एकत्र होते थे उन्हें धूप में सुखा लिया जाता था । चारपाई पर कोई कपड़ा डालकर उन्हें फैला दिया जाता था । अक्सर मुझे पहरे पर बैठाया जाता था क्योंकि सूखने वाली पूरियों पर कौए, मुर्गियाँ, कुत्ते अक्सर टूट पड़ते थे । जरा सी आँख बची कि पूरियाँ साफ, इसलिए डंडा लेकर चारपाई के पास बैठना पड़ता था ।

ये सूखी पूरियाँ बरसात के कठिन दिनों में बहुत काम आती थीं । उन्हें पानी में भिगोकर उबाल लिया जाता था । उबली हुई पूरियों पर बारीक मिर्च और नमक डालकर खाने में मजा आता था । कभी-कभी गुड़ डालकर लुगदी जैसा बनाया जाता था, जिसे सभी बड़े चाव से खाते थे ।

आज जब मैं इन सब बातों के बारे में सोचता हूँ तो मन के भीतर काँटे जैसे उगने लगते हैं । कैसा जीवन था ।

दिन-रात मर-खप कर भी हमारे पसीने की कीमत मात्र जूठन, फिर भी किसी को कोई शिकायत नहीं । कोई शर्मिंदगी नहीं, कोई पश्चाताप नहीं ।

जब मैं छोटा था, माँ के साथ जाता था । माँ-पिताजी का हाथ बँटाने । तगाओ (त्यागियों) के खाने को देखकर अक्सर सोचा करता था कि हमें ऐसा खाना क्यों नहीं मिलता है ? आज जब सोचता हूँ तो जी मितलाने लगता है ।

अभी पिछले वर्ष मेरे निवास पर सुखदेव सिंह त्यागी का पोता सुरेंद्र सिंह आया था, किसी इंटरव्यू के सिलसिले में । गाँव से मेरा पता लेकर आया था । रात में रुका ।

मेरी पत्नी ने उसे यथासंभव अच्छा खाना खिलाया । खाना खाते-खाते वह बोला, "भाभी जी, आपके हाथ का खाना तो बहुत जायकेदार है । हमारे घर में तो कोई भी ऐसा खाना नहीं बना सकता है ।"

उसकी बात सुनकर मेरी पत्नी तो खुश हुई लेकिन मैं काफी देर तक विचलित रहा । बचपन की घटनाएँ स्मृति का दरवाजा खटखटाने लगीं ।

सुरेंद्र तब पैदा भी नहीं हुआ था । उसकी बड़ी बुआ यानी सुखदेव सिंह त्यागी की लड़की की शादी थी । उनके यहाँ मेरी माँ सफाई करती थी । शादी से दस-बारह दिन पहले से माँ-पिताजी ने सुखदेव सिंह त्यागी के घर-आँगन से लेकर बाहर तक के अनेक काम किए थे । बेटी की शादी का मतलब गाँवभर

की इज्जत का सवाल था । कहीं कोई कमी नहीं रह जाए । गाँवभर की चारपाइयों को ढो-ढोकर इकट्ठा किया था पिताजी ने ।

बारात खाना खा रही थी । माँ टोकरा लिए दरवाजे से बाहर बैठी थी । मैं और मेरी छोटी बहन माया माँ से सिमटे बैठे थे, इस उम्मीद में कि भीतर से जो मिठाई और पकवानों की महक आ रही है वह हमें भी खाने को मिलेंगे ।

जब सब लोग खा-खाकर चले गए तो मेरी माँ ने सुखदेव सिंह त्यागी को दालान से बाहर आते देखकर कहा, "चौधरी जी, ईब तो सब खाणा खा के चले गए ...... म्हारे जाकतों कू भी एक पत्तल पर धर कू कुछ दे दो ! वो बी तो इस दिन का इंतजार कर रे ते ।"

सुखदेव सिंह ने जूठी पत्तलों से भरे टोकरे की तरफ इशारा करके कहा, "टोकरा भरके जो जूठन ले जा रही है...ऊपर से जाकतों के लिए खाणा मांग री है । अपणी औकात में रह चूहड़ी । उठा टोकरा दरवाजे से और चलती बन ।"....

(3)

......उन दिनों मैं नौवीं कक्षा में था । घर की आर्थिक हालत कमजोर थी । एक-एक पैसे के लिए परिवार के प्रत्येक सदस्य को खटना पड़ता था । मेरे पास पाठ्यपुस्तकें हमेशा कम रहती थीं । दोस्तों से माँग कर काम चलाना पड़ता था । कपड़ों की भी वही स्थिति थी । जो मिल गया वही पहन लिया । जो वक्त पर मिला खा लिया, उन दिनों गाँव में मरने वाले पशुओं को उठाने का काम भी चूहड़ों के जिम्मे था । जिसके घर में जो काम करता था, उसके मरे हुए पशु भी उसी को उठाने पड़ते थे । इसके बदले कोई मेहनताना या मजदूरी नहीं मिलती थी । एक गाय, बैल या भैंस को उठाने के लिए चार से छह लोगों की जरूरत होती थी । जिसका मवेशी मर जाता था उसे जल्दी लगी रहती थी । इसीलिए वह बार-बार बस्ती में आकर चिल्लाता था । देर होने पर गालियाँ बकता था । उठाने वालों को इकट्ठा करने में अक्सर देर हो ही जाती थी ।

मरे हुए पशुओं को उठाना बड़ा कठिन काम होता है । उसके अगले-पिछले पैरों को रस्सी से बाँध कर बाँस की मोटी-मोटी बाहियों से उठाना पड़ता था । इतने श्रमसाध्य काम के बदले में मात्र गालियाँ...।

कितने क्रूर समाज में रहे हैं हम, जहाँ श्रम का कोई मोल ही नहीं बल्कि निर्धनता को बरकरार रखने का एक षड्यंत्र ही था यह सब ।

मरे हुए पशु की खाल मुजफ्फरनगर के चमड़ा बाजार में बिक जाती थी । उन दिनों एक पशु की खाल बीस से पच्चीस रुपए में बिकती थी । आने-जाने और मरे हुए पशु को उठाने की मजदूरी देकर मुश्किल से एक खाल के बदले दस-पंद्रह रुपए हाथ में आते थे । तंगी के दिनों में दस-पंद्रह रुपए भी बहुत बड़ी रकम दिखाई पड़ते थे ।

चमड़ा खरीदने वाला दूकानदार खाल में बहुत मीन-मेख निकालता था । कट-फट जाने पर खाल बेकार हो जाती थी । खाल को निकालते ही उस पर नमक लगाना पड़ता था, वर्ना दूसरे दिन ही खाल

खराब हो जाती थी, जिसे दूकानदार खरीदने से मना कर देता था ।

एक रोज ब्रह्मदेव तगा का बैल खेत से लौटते समय रास्ते में गिर पड़ा । उठ नहीं पाया, मर गया। कुछ ही देर बाद ब्रह्मदेव ने हमारे घर खबर कर दी थी । पिताजी और मुझसे बड़े भाई जनेसर उस रोज किसी रिश्तेदारी में गए थे । घर पर माँ, मेरी बहन माया, और सब से बड़ी भाभी देवी ही रहती थी। जसवीर उन दिनों देहरादून में था मामा के पास ।

माँ परेशान हो गई थी । बैल की खाल उतारने किसे भेजे ? बस्ती में एक-दो लोग थे लेकिन कोई भी उस समय जाने को तैयार नहीं था । माँ ने चाचा से बात की । वे तैयार हो गए थे । लेकिन उनके साथ किसी को जाना चाहिए । अकेले वे खाल नहीं उतार पाएँगे ।

मैं उस समय स्कूल में था । माँ ने थक-हार कर मुझे ही बुला लिया । माँ नहीं चाहती थी कि वह काम मुझे करना पड़े लेकिन खाल बेचकर जो दस-पंद्रह रुपए मिलने वाले थे, उन्हें छोड़ पाने की स्थिति में माँ नहीं थी । हार कर माँ ने मुझे चाचा के साथ भेज दिया । मेरे चाचा, सोल्हड़ महाकामचोर थे बस, सारा दिन ढोल ताशों में लगे रहते थे, मेहनत के काम से कतराते थे ।

माँ को फिकर लगी थी कि कहीं हमारे पहुँचने से पहले ही बैल पर गिद्ध या जंगली जानवर न टूट पड़ें ।

चाचा ने खाल उतारनी शुरू की । मैं उनकी मदद कर रहा था । चाचा का हाथ धीरे-धीरे चल रहा था । पिताजी जैसी कुशलता उनमें नहीं थी । थोड़ी देर बाद वे थक कर बीड़ी पीने बैठ गए ।

चाचा ने एक छुरी मेरे हाथ में पकड़ा दी । बोले, धीरे-धीरे खाल उतारो । अकेले से तो शाम तक नहीं उतरेगी ।

छुरी पकड़ते ही मेरे हाथ काँप रहे थे । अजीब से संकट में फँस गया था । चाचा ने छुरी चलाने का ढंग सिखाया । उस रोज मेरे भीतर बहुत कुछ था जो टूट रहा था । चाचा की हिदायत पर मैंने बैल की खाल उतारी थी । मैं जैसे स्वयं ही गहरे दलदल में फँस रहा था । जहाँ से मैं उबरना चाहता था । हालात मुझे उसी दलदल में घसीट रहे थे । चाचा के साथ तपती दुपहरी में जिस यातना को मैंने भोगा था आज भी उसके जख्म मेरे तन पर ताजा हैं ।

जैसे-जैसे खाल उतर रही थी मेरे भीतर का रक्त जम रहा था । खाल उतारने में हमें कई घंटे लग गए थे चाचा ने खाल को जमीन पर फैला दिया । उस पर लगे खून को सूखी जमीन ने सोख लिया था।

चाचा ने खाल को चादर में बाँध दिया था । गठरी उठाकर सर पर रख ली थी । लगभग दो मील की दूरी पर हमारा घर था । बोझ के कारण चाचा को तेज चलना पड़ रहा था । मैं हाथ में छुरी पकड़ उनके पीछे-पीछे लगभग दौड़ता जाता था । बसेड़ा जाने वाली पक्की सड़क से हम लोग बस-अड्डे के पास पहुँच गए थे । गठरी सिर से उतार कर चाचा ने जमीन पर रख दी थी । ''यहाँ से आगे तुम ले जाओ, मैं थक गया हूँ ।''

उस रोज मैंने चाचा से बहुत कहा लेकिन वे नहीं माने । ''चाचा बस-अड्डे की भीड़ पार करा

दो, मेरे स्कूल की छुट्टी का समय है । मेरे स्कूल के सभी साथी यह ले जाते हुए देखेंगे तो वे स्कूल में मुझे तंग करेंगे ।'' मैंने गिड़गिड़ा कर रुआँसी आवाज में चाचा से कहा था । किंतु वे नहीं पसीजे । गठरी उठाकर मेरे सिर पर रख दी । गठरी का वजन मेरे वजन से ज्यादा था । मजबूरन उठाकर चलना पड़ा। बस-अड्डे की परिचित भीड़ से मैं उस रोज जिस तरह से निकला, मेरा ही मन जानता है । एक भय लगातार मेरा पीछा कर रहा था कोई देख ने ले । कोई सहपाठी न मिल जाए । अगर कोई पूछ बैठेगा तो क्या बताऊँगा ?

घर तक पहुँचते-पहुँचते मेरी टाँगें जवाब दे गई थीं । लग रहा था कि अब गिरा । गाँव के किनारे-किनारे चलकर, लंबा चक्कर काटा था, बस्ती तक पहुँचने के लिए ।

मुझे उस हालत में देखकर माँ रो पड़ी थी । मैं सिर से लेकर पाँव तक गंदगी से भरा हुआ था। कपड़ों पर खून के धब्बे साफ दिखाई दे रहे थे । बड़ी भाभी ने उस रोज माँ से कहा था, ''इनसे ये न कराओ ...भूखे रह लेंगे ....इन्हें इस गंदगी में ना घसीटो !'' भाभी के ये शब्द आज भी मेरे लिए अँधेरे में रोशनी बन कर चमकते हैं । मैं उस गंदगी से बाहर निकल आया हूँ लेकिन लाखों लोग आज भी उस घिनौनी जिंदगी को जी रहे हैं ।

❑❑❑

अभ्यास

पाठ के साथ

1. विद्यालय में लेखक के साथ कैसी घटनाएँ घटती हैं ?
2. पिताजी ने स्कूल में क्या देखा ? उन्होंने आगे क्या किया ? पूरा विवरण अपने शब्दों में लिखें ।
3. बचपन में लेखक के साथ जो कुछ हुआ, आप कल्पना करें कि आपके साथ भी हुआ हो– ऐसी स्थिति में आप अपने अनुभव और प्रतिक्रिया को अपनी भाषा में लिखिए ।
4. किन बातों को सोचकर लेखक के भीतर काँटे जैसे उगने लगते हैं ?
5. 'दिन रात मर खप कर भी हमारे पसीने की कीमत मात्र जूठन, फिर भी किसी को शिकायत नहीं । कोई शर्मिंदगी नहीं, कोई पश्चाताप नहीं ।'' ऐसा क्यों ? सोचिए और उत्तर दीजिए ।
6. सुरेंद्र की बातों को सुनकर लेखक विचलित क्यों हो जाते हैं ?
7. घर पहुँचने पर लेखक को देख उनकी माँ क्यों रो पड़ती हैं ?
8. व्याख्या करें –

   'कितने क्रूर समाज में रहे हैं हम, जहाँ श्रम का कोई मोल ही नहीं बल्कि निर्धनता को बरकरार रखने का षड्यंत्र ही था यह सब ।'

9. लेखक की भाभी क्या कहती हैं ? उनके कथन का महत्त्व बताइए ।
10. इस आत्मकथांश को पढ़ते हुए आपके मन में कैसे भाव आए, सबसे अधिक उद्वेलित करने वाला अंश कौन है, अपनी टिप्पणी लिखिए ।

पाठ के आस-पास

1. बीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों में हिंदी में दलित लेखन की शुरुआत हुई । यद्यपि इन विषयों पर पहले भी लिखा जाता रहा है । प्रेमचंद की कहानी 'कफन' इसका उत्कृष्ट उदाहरण है, इसी के साथ यह भी बहस चल पड़ी कि दलित साहित्य के अंतर्गत उसे ही स्वीकृति मिल सकती है जो स्वानुभूत है, आप क्या सोचते हैं, मित्रों से चर्चा कीजिए ।
2. जिन स्थितियों में लेखक का बचपन गुजरा है, क्या आप अपने बचपन से उसकी तुलना करना चाहेंगे, अपने बचपन की किन यादों को आप लिखना चाहेंगे ।
3. वे कौन से कारण हैं जिनसे पाठ में वर्णित स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न न हों, इसके लिए क्या किया जाना चाहिए ?
4. हिंदी के प्रमुख दलित साहित्यकारों के बारे में जानकारी एकत्र करें ।
5. अपने गाँव-नगर या आस-पड़ोस के किसी दलित परिवार का पूरा ब्यौरा लिखिए और उसका स्कूल की गोष्ठी में पाठ कीजिए ।

भाषा की बात

1. नीचे लिखे वाक्यों से सर्वनाम छाँटें –
   (क) लंबा-चौड़ा मैदान मेरे वजूद से कई गुना बड़ा था ।
   (ख) उनकी दहाड़ सुनकर मैं थर-थर काँपने लगा था ।
   (ग) हेडमास्टर अपने कमरे में बैठे थे लेकिन निगाह मुझ पर टिकी हुई थी ।
   (घ) मेरी हिचकियाँ बँध गई थीं ।
2. निम्नलिखित शब्दों के लिए उपयुक्त विशेषण दें –
   खाई, कक्षा, मैदान, बारात, जिंदगी, टाँगें, चादर, गठरी, छुरी, खाल
3. नीचे लिखे शब्दों के पर्याय दें –
   चाव, अक्सर, कीमत, तकलीफदेह, इसलिए
4. रचना की दृष्टि से निम्नलिखित वाक्यों की प्रकृति बताएँ –
   (क) चाचा ने खाल उतारना शुरू किया ।
   (ख) उस रोज मैंने चाचा से बहुत कहा लेकिन वे नहीं माने ।
   (ग) जैसे-जैसे खाल उतर रही थी मेरे भीतर रक्त जम रहा था ।
   (घ) जाते ही हेडमास्टर ने फिर झाड़ू के काम पर लगा दिया ।
   (ङ) एक त्यागी लड़के ने चिल्लाकर कहा, मास्साब वो बैठा है कोणे में ।

शब्द निधि

कुरड़ियों : कूड़ा फेंकने की जगह, घूरा
मीन-मेख : दोष निकालना
दहाड़ : गर्जना